123 पाठ्यक्रम निर्माण के विविध आयाम

रश्मि पालीवाल

पिछले बीस सालों से एकलव्य में सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम के विभिन्न आयामों को समझने और कुछ नए रास्ते खोजने का प्रयास चल रहा है। इनमें से कुछ अनुभवों और विचारों की चर्चा यहां करूंगी।

कक्षा 1 से 5 तक एकलव्य ने प्राथमिक शिक्षा का एक पाठ्यक्रम विकसित किया था। कई सालों तक भाषा, गणित, कला, सृजनात्मकता, पर्यावरण, इतिहास, भूगोल, विज्ञान के पहलू इन्टीग्रेटेड रूप में पाठ्य सामग्री में संयोजित रखे गए। हाल ही में शिक्षकों के सुझावों और अन्य पाठ्य - क्रमों की समीक्षा करते हुए इस स्वरूप

को बदला गया है और कक्षा 4 व 5 में भाषा, गणित व पर्यावरण अध्ययन की सामग्री अलग-अलग संयोजित की गई है।[1]

कक्षा 9 और 10 के लिए हाल ही में विचार-विमर्श की प्रक्रिया शुरू हुई है पर यह अभी प्रारंभिक स्तर पर है और सामग्री विकास का काम अभी नहीं हुआ है।[2]

पूरे ही स्कूल पाठ्यक्रम में एकलव्य ने छात्र की सीखने की प्रक्रिया को मजबूत और संपन्न करने के उद्देश्य को केन्द्र में रखा है। सोचने, समझने, अभिव्यक्त करने की विभिन्न क्षमताओं को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए ही विषयवस्तु व सामग्री का चयन व उसका प्रस्तुतीकरण किया गया है।

इस मूल प्रयास को 'गोलाई' देने के लिए, व्यावहारिक तालमेल प्रदान करने के लिए कई उपयुक्त विषय शामिल ज़रूर किए गए – जैसे कक्षा 4 व 5 की पुस्तकों में राज्य के पाठ्यक्रम से तालमेल के लिए मध्य प्रदेश व भारत के अलग-अलग प्राकृतिक प्रदेशों की विषयवस्तु बढ़ाई गई।

पास और दूर का परिवेश

बच्चों के साथ हुए अनुभव कई तरह के हैं पर यहां एक खास सूत्र को पकड़ कर बात करूंगी और वो है, किस स्तर पर क्या अपेक्षाएं की जानी चाहिए। किसी भी कक्षा में खासकर कक्षा 6वीं, 7वीं तक, 30 से 50 % बच्चे ऐसे मिलते हैं, जिन्हें स्कूली तंत्र पढ़कर समझने और स्वयं लिखकर कुछ कहने की क्षमता तक नहीं पहुंचा पाया है। पाठ्यक्रम सुधारों की सीमाओं और स्कूली तंत्र की संस्थागत कमज़ोरी के कारण भी कक्षाओं में सीखने-सिखाने का माहौल पर्याप्त कारगर नहीं बन पाता और जहां उन छात्रों का सहयोग करना हो, जो व्यक्तिगत या सामाजिक परिस्थितियों के चलते विशेष ध्यान के हकदार हैं, तो यह कारगरता और भी कम हो जाती है। इस सीमा को ध्यान में रखते हुए ही आगे की बातचीत की जाएगी।

सामाजिक अध्ययन के संदर्भ में बच्चों के साथ हुए अनुभवों से यह बात समझना बहुत महत्वपूर्ण था कि पास के और दूर के परिवेश के बीच जो विभेद आमतौर पर पेश किया

1 शासन की अनुमति से एकलव्य का यह प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम ज़िला बैतूल के शाहपुर विकास खण्ड की समस्त 125 शालाओं में 1995 से लागू था। इस कार्यक्रम को जुलाई 2001 में शासन द्वारा समाप्त किया गया।

2 कक्षा 6, 7, 8 के माध्यमिक स्तर के लिए सामाजिक अध्ययन विषय के अंतर्गत एकलव्य द्वारा एक समग्र परिप्रेक्ष्य रखते हुए इतिहास, भूगोल व नागरिक शास्त्र खण्डों में सामग्री विकसित की गई जो कई अवसरों पर तीनों खण्डों के बीच जुड़ाव भी बनाती है।

जाता है, वो बहुत हद तक सही नहीं है। ऐसा नहीं है कि प्राथमिक शाला के छात्रों के लिए उनके आसपास की जानकारी रोचक होती है, व बढ़ते क्रम में प्रदेश, देश व विदेश की जानकारी बड़ी उम्र के छात्रों के लिए अर्थपूर्ण होती है। बच्चों की रुचि और जिज्ञासा हर चीज़ में होती है, पास की हो या दूर की। प्रो. कृष्ण कुमार भी अपनी पुस्तक 'शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व' में गौर करते हैं कि – "बच्चों की रुचि सभी तरह की चीज़ों में होती है... उनकी रुचि को किसी भी प्रकार के ज्ञान के बारे में जगाया जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे पेश किस तरह किया गया है। इसलिए क्या पढ़ाने लायक है और क्या नहीं है, यह सवाल बच्चों के दृष्टि कोण से विशेष प्रासंगिक नहीं है।"

परिचित चीज़ की चर्चा भी विमुख करने वाली हो सकती है, इसका अहसास हमें कई अनुभवों से हुआ। एक बार कक्षा 6 की हमारी पुस्तक [3] के पाठ 'पहाड़ पर बसा गांव – पाहवाड़ी' के बारे में बच्चों से मैं चर्चा कर रही थी। हमने पाठ का एक अंश पढ़ा जिसमें बताया गया था कि गांव की पथरीली, बलुआ मिट्टी वाली ढलानों पर क्यों कोदो, कुटकी व तिल जैसी फसलें होती हैं, तथा सोयाबीन क्यों नहीं होती। खेती-बाड़ी की ये बातें उस ग्रामीण स्कूल के छात्रों के लिए परिचित बातें ही थीं, यद्यपि वे उनके नहीं, थोड़ी दूर के एक गांव के बारे में थीं। यह पाठ पहले भी कक्षा में किया जा चुका था। मेरे साथ अंश पढ़ने के बाद जब बच्चों को यह लिखने को कहा गया कि ढलवां ज़मीन पर कोदो कुटकी क्यों उगाई जाती है, तो 60% छात्र इसका उत्तर नहीं लिख पाए। किसी कारण वह पूरी विषयवस्तु परिचित होने के बावजूद, उनके लिए स्वयं लिखते और पढ़ते वक्त अभेद्य बनी रही। ऐसे बहुत से अनुभव हैं जहां पुस्तक देखने का मौका होते हुए भी छात्र संक्षेप में, दो टूक शब्दों में लिखी जानकारी को नहीं पकड़ पाते, चाहे वो परिचित विषयवस्तु के बारे में हो। दूसरी तरफ जिन पाठों में विषयवस्तु का प्रस्तुतिकरण ऐसा बन

3 हमारी किताब से आशय एकलव्य संस्था द्वारा निर्मित सामाजिक अध्ययन की किताबों से है। 1986 से इस प्रयास में म.प्र. शासन का भी सहयोग रहा। म.प्र. शासन की अनुमति से 8 शासकीय शालाओं में एकलव्य द्वारा विकसित पाठ्यपुस्तकों का उपयोग नियमित पाठ्यपुस्तकों की तरह किया गया है। सन् 1999 से एकलव्य द्वारा इस कार्यक्रम को अधिक स्कूलों में पहुंचाने का प्रयास सक्रिय हुआ। म.प्र. शासन ने अगस्त 2002 में 8 स्कूलों में चल रहे प्रायोगिक कार्यक्रम को समाप्त कर दिया; साथ ही स्कूलों को यह अनुमति दी गई है कि वे एकलव्य की पाठ्यपुस्तकों को अनुपूरक पाठ्य सामग्री की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं।

पाया है कि उसके बारे में एक सशक्त व जीवन्त छवि निर्मित हो पाई है, (कहानियों के माध्यम से, अपने परिवेश से तुलना करने के माध्यम से आदि...) उनमें बच्चों के मन में अवधारणाएं बन पाई हैं। इस संबंध में एक और उदाहरण याद आता है। एकलव्य की कक्षा 8 की पाठ्यपुस्तक के पहले संस्करण में ब्रिटिश काल के पाठ अच्छी तरह से विकसित नहीं किए जा सके थे। वे संक्षेप में जानकारियों व तर्कों की मोटी रूपरेखा बताते चलते थे। तब हम पाते थे कि जहां आठवीं कक्षा के बहुत से छात्र मुगलकाल (जो समय के हिसाब से उनसे और ज़्यादा दूर था) की बातों को बेहतर समझ कर व्यक्त करने को तत्पर रहते थे, वहीं ब्रिटिशकाल की दो टूक जानकारियों को पढ़ते हुए निकल जाते थे, पर प्रश्न के उत्तर के रूप में उन्हें पहचान नहीं पाते थे।

कितनी अंतरंग पहचान

तो सवाल दूर व पास का नहीं – सवाल है कि हम विषयवस्तु से छात्र की कितनी अंतरंग पहचान करवा पाते हैं। यह कुछ वैसा ही है जैसा कविता की पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या करना। साहित्य का शिक्षण सिर्फ कविता की पंक्तियां कंठस्थ करने से पूरा नहीं समझा जाता – तो इतिहास भूगोल का शिक्षण तथ्यों को कंठस्थ कर लेने से कैसे पूरा हो जाता है? सामाजिक अध्ययन में भी हर 'तथ्य' की संदर्भ सहित व्याख्या करनी ज़रूरी है, तभी वह छात्र के लिए प्रासंगिक बन पाता है। कविता तो कंठस्थ करने को भी अपने छंद व लय के कारण आनन्दपूर्ण बनाती है, पर यह गुण इतिहास-भूगोल के तथ्यों में स्वयंमेव तो नहीं ही है। जब हम सामाजिक अध्ययन को प्रासंगिक व आनन्दपूर्ण बनाने के लिए तथ्यों के संदर्भ निर्मित करने लगते हैं, तो उसमें लगता है समय और ध्यान। बच्चों के साथ हुए सारे अनुभव संदर्भों और उनके लिए समय की मांग को रेखांकित करते प्रतीत होते हैं। जब संदर्भ बनते हैं, तो अवधारणाएं बनती हैं, और अभिव्यक्ति भी प्रेरित होती है। ब्रिटिशकाल के पाठ जब हमारे द्वारा बदले गए, विस्तृत छवियों को उकेरते हुए दुबारा लिखे गए तो आठवीं कक्षा के छात्र उनकी 'जानकारियों' से सहज सरोकार बना पाए, दो अलग युगों के बीच आए बदलाव की धारणा बना पाए। उदाहरण के लिए एक छात्र का जवाब यहां उद्धृत है। प्रश्न था, 'अंग्रेज़ों से पहले लोग जंगल का उपयोग कैसे करते थे और अंग्रेज़ों के शासन में जंगल का उपयोग कैसे करते थे? तुलना करो और अपने शब्दों में लिखो।'

छात्र का उत्तर है, उसके अपने शब्दों में, "अंग्रेज़ों से पहले लोग जंगल

का उपयोग खुल्लेआम करते थे। वहां से फल, लकड़ी, खेती करना ये सब वे अपने मन से करते थे तथा अंग्रेज़ों के शासन में वे उसका उपयोग खुल्लेआम नहीं कर पाते और वे लकड़ी लेने जाते तो उनको अंग्रेज़ के आदमी रोकते और जंगल में लकड़ी काटने से मना कर दिया और वे खेती जहां कहीं भी करते थे अब वे खेती अंग्रेज़ बांट कर देते थे और कहीं की ज़मीन उनके नाम लिख दी और अगर यदि वे फिर कहीं दूसरी जगह पर खेती करते तो वह उन्हें पकड़ ले जाते और उन्हें बंद कर देते थे।''

अतः पाठ्यक्रम निर्माण इस तरह किया जाना चाहिए कि तथ्यों के संदर्भों को प्रस्तुत करने का समय उपलब्ध हो सके।

इतना सब कहने के बाद, मुझे लगता है कि 'दूर' और 'पास' वाला मामला पूरी तरह खारिज नहीं हो जाता है। अपने निजी परिवेश की जानकारियों पर बच्चों की पकड़ मज़बूत होती है। इसलिए उसके आधार पर जल्दी ही विश्लेषण, वर्गीकरण, तर्क की क्रियाएं की जा सकती हैं। दूसरे परिवेश की जानकारियों को आत्मसात करने के पर्याप्त अवसर देने में ज़्यादा समय व प्रयास लगता है। ऐसे पर्याप्त अवसर दिए बिना उन परिवेशों के बारे में कल्पना करने, अनुमान लगाने, तर्क करने, वर्गीकरण करने, आदि के क्रिया-कलाप बहुत फलदाई नहीं हो पाते। इस फर्क को ध्यान में रखते हुए 'दूर' व 'पास' की विषयवस्तु का अनुकूल उपयोग पाठ्यक्रम में किया जाना चहिए।

अकेले करना, समूह में करना

दूर और पास के विभेद से शायद थोड़ा ज़्यादा गंभीर विभेद है लिखित और मौखिक का, व्यक्तिगत और सामूहिक का। समूह में मिलकर बातचीत करते हुए छात्र जो क्षमता दर्शाते हैं वो अकेले पढ़ कर, लिखित उत्तर देने के सिलसिले में दर्शाई क्षमता से अधिक होती है। जब किसी बात का सिर्फ ब्यौरा नहीं, पर विश्लेषण करना होता है, कार्यकारण संबंध ढूंढना होता है तब समूह में चर्चा के माहौल में छात्र अपनी क्षमताएं आगे बढ़ा पाते हैं। उदाहरण के लिए हमने पाया कि गांव के छठी कक्षा के बच्चे किसानों का वर्गीकरण करने का अभ्यास कर पाए। छोटा किसान, मध्यम किसान और बड़ा किसान कैसे परिभाषित किए जा सकते हैं – यह बात पाठ में कुछ उदाहरणों से प्रस्तुत की गई थी। इसके बाद बच्चों ने अपने-अपने परिवार की जानकारी अपनी टोली में बताई और चर्चा करके उन्होंने तय किया कि उनका परिवार किस वर्ग में शामिल माना जा सकता है व किस कारण से। ऐसे अभ्यास अकेले लिखते हुए वे कर लेते हैं, पर आधे-अधूरे ढंग से।

बच्चों के जीवन-अनुभव भी स्वाभाविक तौर से उनकी क्षमताओं पर असर डालते हैं। मुझे याद आता है कि 7वीं कक्षा के छात्रों के साथ मैं ठेकेदारी प्रथा से बीड़ी बनवाने के उद्योग की चर्चा कर रही थी, जिस पर वे पाठ पढ़ चुके थे। पाठ में मज़दूरों की तुलना इस आधार पर की गई है कि जिन्हें 'कार्ड' मिले हुए हैं व जिन्हें फैक्ट्री के मालिक से 'कार्ड' नहीं मिले हैं। बच्चे इस अन्तर को कुछ हद तक पकड़ने का प्रयास कर रहे थे – पर एक छात्र यह पूरी तुलना और उसका तर्क बड़ी ही सहजता से कर रहा था। वह खुद बीड़ी बनाने की मज़दूरी कर चुका था।

इसी तरह कई 'मुश्किल' सामाजिक मुद्दों पर मैंने पाया कि गांव के छात्र सटीक तर्क कर लेते हैं, शर्त यह है कि मुद्दा ऐसे प्रस्तुत हुआ हो कि उनके अनुभव के तारों को छू सके। और यह तब होता है जब हम दूसरे समाजों का अनुभव पूरी संजीदगी से छात्रों के लिए प्रस्तुत करते हैं, उनका सारांश या संक्षेपिका नहीं।

कैसी हो पाठ्यक्रम की रूपरेखा

जैसे-जैसे बच्चों के साथ अनुभव होते गए, पहली से दसवीं कक्षाओं तक क्या पढ़ाना चाहिए की एक रूपरेखा हमारे बीच उभरने लगी। पहली से तीसरी तक निस्सन्देह ज़ोर इस बात पर होना चाहिए कि बच्चे स्वयं सरलता से पढ़ कर समझ सकें, अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकें व अपने अनुभवों व अवलोकनों की छानबीन कर सकें। इस उद्देश्य से लोगों, जीवों और चीज़ों से जुड़े बिल्कुल छोटे, घटनाप्रद प्रसंग इस उम्र के लिए उपयुक्त विषय-वस्तु बनते हैं।

चौथी-पांचवीं में विषयवस्तु के प्रसंग घटनाओं के दायरे से उठकर और व्यापक बन सकते हैं। वे अलग-अलग परिवेशों के भौतिक जीवन को जीवन्त कहानियों व वर्णनों के ज़रिए प्रस्तुत कर सकते हैं।

छठवीं से आठवीं तक भौतिक जीवन के अलावा अलग-अलग परिवेशों के सामाजिक-राजनैतिक प्रसंग, संबंध तथा संस्थाएं विषयवस्तु का हिस्सा बनना शुरू कर सकती हैं। बहरहाल इन आयामों की प्रस्तुति ठोस सदर्भों से जुड़ी होनी चाहिए। चौथी-पांचवीं में शुरू ही किया गया समाजों के बीच तुलनात्मक अध्ययन व तर्क का सिलसिला आठवीं तक ज़्यादा ज़ोर के साथ जारी रहना चाहिए।

यह अभ्यास छात्रों के मन में अवधारणाओं की नींव डालने लगता है। 9वीं-10वीं में इसी स्तर से आगे बढ़ते हुए, परिभाषाओं और सिद्धांतों की खोज को गति दी जानी चाहिए, व्याख्याओं व मत-विमत के निर्माण

को गति दी जानी चाहिए। माध्यमिक स्तर तक भारत के इतिहास और दुनिया के विभिन्न देशों के भूगोल का संदर्भ-पूर्ण विश्लेषण कर लेने के बाद 9वीं-10वीं कक्षाओं में विश्व स्तरीय प्रक्रियाओं, सिद्धांतों और वर्गीकरणों का सूत्र छात्रों को पकड़ाया जा सकता है। यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि आठवीं तक ठोस संदर्भों में बनी अवधारणाओं के सहारे वे विश्व-व्यापी प्रकियाओं की असलियत का आभास कर पाएंगे।

यह एक स्थूल रूपाकृति है– पाठ्यक्रम के सोपानों की। हर चरण पर बीते चरण की उपलब्धियों को मजबूत करने और अगले चरण की चुनौतियों का अंदाज़ लेने का पुट सहज ढंग से बना ही रहना चाहिए। फिर विषय वस्तु और सामग्री की प्रकृति भी उपरोक्त रूपरेखा को प्रभावित करेगी ही।

पाठ्यक्रम निर्माण और उससे आगे

अभी तक जैसी चर्चा की गई है वैसे बच्चों की क्षमताओं और सीखने की प्रक्रियाओं के साथ आदरपूर्ण तालमेल बिठाते हुए पाठ्यक्रम निर्माण की कोशिश ज़रूर उसके बदनाम 'बोझ' और 'निरर्थकता' की समस्या को दूर कर सकेगी। किन्तु पाठ्यक्रम निर्माण का एक यही आयाम तो नहीं है। पहली बात तो यह कि ऐसी कोशिश में निहित है कि विषयवस्तु में तथ्यों की औपचारिक भरमार नहीं हो सकती। कोई जानकारी दी जाएगी तो उसके ठोस संदर्भ के साथ दी जाएगी। स्कूली दिनचर्या की समय सीमा का यह तकाज़ा बनेगा ही कि एक हद से ज़्यादा विषयवस्तु छात्रों के सामने प्रासंगिक तरीके से प्रस्तुत नहीं की जा सकती। तब, उस विषयवस्तु का क्या स्थान रहेगा जो पाठ्यक्रम में स्थान नहीं पा सकेगी? यदि हम इस प्रश्न का विश्वसनीय हल नहीं निकाल सके, तो पाठ्यक्रम सुधार के प्रयासों पर हमेशा आंच आती रहेगी। इसलिए, स्कूली समय की सीमाओं को लांघना होगा और ज़्यादा-से-ज़्यादा विषयों पर प्रासंगिक साहित्य सृजन को व पुस्तकालयों की सक्रियता को उतना ही महत्व देना होगा जितना हम स्कूली समय के भीतर के पाठ्यक्रम को दे रहे हैं। हम जब विपुल साहित्य सृजन और पुस्तकालय विकास के काम को गंभीरता देंगे, तभी शायद औपचारिक पाठ्यक्रम के लिए किए गए विषयों के अपने चुनाव की सदाशयता के बारे में लोगों को विश्वस्त कर पाएंगे और शिक्षा की व्यापकता के साथ अपना संबंध भी हरा रख पाएंगे। अन्यथा, 'यह क्यों जोड़ा, वह क्यों छोड़ा' की राजनैतिक खींचातानी छात्र की दृष्टि से पाठ्यक्रम निर्माण के प्रयासों को हमेशा पछाड़ती रहेगी। पाठ्यक्रम निर्माताओं को यह विश्वास दिलाना

चाहिए कि वे किसी विषय को कम महत्वपूर्ण नहीं मानते, पर हर विषय को उसका महत्व देने के लिए उसे औपचारिकता के नाते 'छू' भर देना वास्तव में उसे महत्व देना नहीं है।

बच्चों को क्या पढ़ाया जाना चाहिए

'कब-क्या पढ़ाएं' इस सवाल का जवाब एक और गहरे पहलू पर टिका है – कि पाठ्यक्रम किन सामाजिक-राजनैतिक मूल्यों पर टिका है। यह एक स्वतंत्र रूप से महत्वपूर्ण प्रश्न है। उदाहरण के लिए एन.सी.ई.आर.टी. के नेशनल करीक्यूलम फ्रेमवर्क (NCF) के नेशनल करीक्यूलम को लेकर हाल में जो बहस छिड़ी हुई है, वह इसी मूल प्रश्न पर टिकी है। NCERT का यह एन.सी.एफ. नामक दस्तावेज़ पाठ्यक्रम का बोझ कम करने, छात्रों की सीखने की प्रक्रिया को महत्व देने, विषयवस्तु को संदर्भ पूर्ण व प्रासंगिक बनाने की बात करता है। ये सारी बातें अलग-अलग राजनैतिक दृष्टि-कोणों को प्रतिपादित करते हुए भी की जा सकती हैं। यह संदेह है, और उसके कारण हैं, कि एन.सी.एफ. में छात्रहित की ये सारी धारणाएं हैं, पर वे जिस दृष्टि से विषयवस्तु का चुनाव करेंगी, वह दृष्टि भारत के संवैधानिक मूल्यों को संरक्षित नहीं करती है। इस बात का फैसला कौन करेगा? सर्वोच्च न्यायालय के पास मामला गया और उसने एन.सी.एफ. के पक्ष में फैसला सुनाया। किन्तु इस फैसले से अलग मत भी समाज में व्याप्त हैं।

एन.सी.एफ. के निर्माताओं को समाज में प्रचलित अन्य परिप्रेक्ष्यों के साथ जूझना ही होगा – और यही बात किसी भी पाठ्यक्रम के लिए लागू होती है। समाज में प्रचलित विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से जूझने से जो परिणाम निकलता है, वह भी तय करता है कि बच्चों को क्या पढ़ाया जाना चाहिए। यह परिणाम देश के संविधान की मूल भावनाओं से सामीप्य रखे, इसके लिए हम सभी को प्रयासरत रहना होगा।

रश्मि पालीवाल: एकलव्य संस्था के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़ी शैक्षणिक मुद्दों पर मतत लेखन।